National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2015; 1(3): 39-42
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 16-12-2015
Accepted: 20-12-2015

दुर्गा उपाध्याय
शोध छात्रा,कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
एस.एस.जीना परिसर, अल्मोड़ा

पुष्पा अवस्थी
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
एस.एस.जीना परिसर, अल्मोड़ा

Correspondence:
दुर्गा उपाध्याय
शोध छात्रा,कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
एस.एस.जीना परिसर, अल्मोड़ा

उपमा का स्वरूप एवं ऋग्वेद में वर्णित उपमानभूत प्रमुख पशुओं का वैशिष्ट्य़

दुर्गा उपाध्याय ,प्रो. पुष्पा अवस्थी

वेद शब्द का अर्थ है ' ज्ञान' समस्त चिन्तन, दर्शन व कला के मूल वेद ही हैं। भारतीय चिन्तन की ऐसी कोई धारा नहीं है जिसका उत्सव वेद में न हो। इसी प्रकार काव्य का मूल भी वेद है। महाभारत, रामायण से प्रारम्भ होकर कालिदास, भारवि आदि के युग में जो काव्य परम्परा प्रवाहित होती रही है। उसका मूल वेदों में ही निहित है। अलंकार, गुण, रीति आदि काव्य के जिन तत्वों से हम परिचित हैं, भामह जिसे रूपक अलंकार कहते हैं, वामन वैदर्भी रीति कहते हैं, भरत रस कहते हैं, ये सब काव्य तत्व वेदों का निकले हैं। वैदिक ऋषियों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए जो उद्धत प्रचण्ड पदावली का प्रयोग किया वही वाक्य-संघटना ने रीतियों को जन्म दिया। इसी प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ऋषि के मुख से अनायास उपमानों की धारा ही उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों के मूल हैं।

साहित्यशास्त्र का प्राचीन नाम अलंङ्कारशास्त्र ही है। प्रारमभ में अलंकार शब्द के विषय में वामन ने कहा है – सौन्दर्यमलंकार:[1] यह अलंकार का व्यापक अर्थ है। काव्यगत सभी विशेषताओं का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता था। परन्तु जब ' करण' के अर्थ में घ् प्रत्यय का प्रयोग होता है, तब अलंकार से उपमा आदि प्रसिद्ध अलंकारों का ग्रहण होता है। सर्वप्रथम भामह ने अलंकार को काव्यशोभा का आधायक तत्व स्वीकार किया है और कहा है:-

रूपकादिरलंकारस्तथान्यैर्बहुधोदितः।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।।[2]

यह कहकर काव्य में अलंकारों के महत्व का प्रतिष्ठित किया। जयदेव अलंकार के महत्व को बतलाते हुए कहते हैं:-

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृति।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती।।[3]

अर्थात जैसे उष्णता रहित अग्नि का होना संभव नहीं है वैसे ही अलंङ्कार रहित काव्य भी कथमपि सम्भव नहीं है। आचार्य मम्मट अलंकार के विषय में कहते हैं:-

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्
द्वारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।

अर्थात जो काव्य में विद्यमान उस " शब्द या अर्थ रूपी अंगी" रस को अंगों के द्वारा नियमेन नहीं अपितु कभी-कभी उत्कर्षयुक्त करते हैं, वे अनुप्रास समानता का उद्देश्य होता है, उपमेय का उत्कर्ष प्रदर्शित करना।

उपमा के लक्षण:

उपमा अलंकार के संदर्भ में आचार्य भामह का कथन है:-

विरूद्धेनोपमानेन देषकालक्रियादिभिः,
उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा।। [4]

अर्थात भामह ने अपने लक्षण में ' देशकालक्रियादिभिः' का प्रयोग से यह स्पष्ट किया है कि गुण आदि का साम्य देश, काल, क्रिया आदि के आधार पर देखा जाता है। यद्यपि उपमान-उपमेय न तो एक स्थान पर होते हैं न एक काल पर और उनकी क्रियाऐं भी समान नहीं होती हैं। 'विरूद्धेन' पद का अर्थ यहां भिन्न अर्थ से है। दो भिन्न वस्तुओं में साम्य उपमा है, किन्तु सर्वात्मना साम्य असम्भव है। दो वस्तुऐं समस्त प्रकार से एक जैसी होती हों, यह तो अकल्पनीय है और ऐसी दशा में उपमा की सम्भावना ही समाप्त हो जाएगी। फलतः 'गुणलेशेन' शब्द का प्रयोग हुआ है। अर्थात संसार में हर वस्तु एक-दूसरे से भिन्न होती है औश्र कवि की प्रतिभा दो वस्तुओं में गुणों के किंचित साम्य के आधार पर उपमा की योजना करती है। दण्डी ने उपमा को परिभाषित करते हुए कहा है –

यथाकथिचित् सादृष्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते
उपमा नाम सा ज्ञेयाः प्रपाचोऽयं निदृष्यते।।[5]

अर्थात जहां जिस किसी प्रकार से समानता स्फुट रूप में प्रतीत होती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है। सादृष्य की प्रतीति शब्द से उपमा आदि " शब्दालङ्कार और अर्थाअलंकार शरीर के शोभाधान द्वारा परम्परया शरीरी आत्मा के उत्कर्षजनक" हार आदि (आभूषण) के समान ' काव्य के' अलंङ्कार होते हैं। सामान्य रूप से काव्यशास्त्रियों ने अलंकारों का त्रिधा विभाजन किया है। शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, उभयालंकार।

उपमा का महत्व:

अर्थालंकार शब्दपरिवृत्तिसह होते हैं अर्थात यदि उनमें शब्दों के परिवर्तन करके उनके समानार्थक दूसरे शब्द प्रयुक्त कर दिए जाएं तो वहां अलंकार में कोई परिवर्तन नहीं होता क्यांकि वे अलंकार अर्थ व आश्रित होते हैं। संस्कृत में वे अलंकार, जिनका आधार तुलना या समानता है सादृश्य मूलक अलंकार कहे जाते हैं; जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि। सादृश्य मूलक अलंकारों में सर्वप्रथम उपमा का ही विवेचन किया जाता है। साहित्यशा स्त्रियों ने उपमा को काव्य प्राण माना है। उन्होंने मुक्तकण्ठ से उपमा की महिमा गाई है:-

अलंकारषिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम।।[6]

अर्थात समस्त अलंकारों में उपमा अलंकार सर्वप्रमुख है जो काव्य की अमूल्य सम्पदा है और कवि वंश की माता के रूप में प्रतिष्ठि है। नाट्यशास्त्र के आचार्य भरत ने भी उपमा को सबसे पहले रखा है "उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तया" कहकर उपमा को प्रथम स्थान दिया है।
उपमा शब्द उप + मा, उप (उपमानस्य) 'समीपे मीयते तुल्यतया परिच्छिद्यते उपमानेन कर्ता उपमेयं कर्म अस्याम्', अर्थात उपमा अलंकार में दो विभिन्न पदार्थों की परस्पर सादृष्य के आधार पर समानता प्रदर्षित की जाती है। इस अधिमान के द्वारा अपेक्षित होती है। लक्षण में ' उद्भूतं' पद क्रिया विषेषण के रूप में माना गया है। किन्तु बहुत बार वाचक शब्द का प्रयोग न करने पर भी सादृष्य की प्रतीति होती है। यहां ' प्रतीयेत' क्रिया का प्रयोग किया है ताकि व्यङग्य रूप से उसका अन्तर्भाव हो जाए। आचार्य मम्मट ने उपमा को परिभाषित करते हुए कहा - " साधुम्रयमुपमा भेदे" [7] अर्थात उपमान और उपमेय में परस्पर भेद होने पर उसके साधम्रय के वर्णन को उपमा कहा है। उपमा के लक्षण में भेद-प्रभेद की कल्पना की है। अनेक आचार्यों ने उपमा के अनेक भेद, प्रभेदों का विवेचन किया है। साधारणतः उपमा के दो भेद सर्वमान्य रहे हैं। पूर्णोपमा और लुप्तोपमा। आचार्य विष्वनाथ ने पूर्णोपमा को इस प्रकार परिभाषित किया है - " जहाँ उपमा में उपमेय, उपमान, वाचक शब्द तथा साधारण धर्म सभी वाच्य हों वहां पूर्णोपमा अलंकार होता है। "[8] वैदिक साहित्य में पूर्णोपमा के अनेक उदाहरण दृष्टव्य होते हैं यथा -

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वष्यानि सदष्वा इव सारथेः।। [9]

अर्थात इस मन्त्र में ऋषि ने विज्ञानवान् व्यक्ति की संयत इन्द्रियों की तुलना सारथि के वषीकृत घोड़ों से की है यहां इन्द्रियाणि उपमेय, सदश्वाः उपमान, इव वाचक शब्द तथा वश्यानि साधारण धर्म है। उपमा के चारों घटकों का समावेष होने के कारण यहां पूर्णोपमा है। ' लुप्तोपमा' उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक शब्द इनमें से उपमान धर्म आदि का उल्लेख न होने से लुप्तोपमा होती है। आचार्य विश्वनाथ ने लुप्तोपमा को परिभाषित करते हुए कहा है :-

लुप्ता सामान्यधमदिरेकस्य यदि वा द्वयोः।
त्रयाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापि पूर्ववत्।।[10]

वैदिक काल में लुप्तोपमा के अनेक उदाहरण दृष्टव्य होते हैं यथा -

युजेवां ब्रह्म पूव्रय नमोभिर्वि श्लोका यन्ति पथ्येव सूरेः।
श्रण्वन्तु विष्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।। [11]

उपमा सबसे प्राचीन अलंकार है। वेदों, ब्राह्मों, आरण्यकों एवं उपनिषदों तक में उपमा का प्रचुर प्रयोग हुआ है। वैदिक (कवियों) मंत्र दृष्टा ऋषियों ने अपने (काव्यों) मन्त्रों में इसका अधिकाधिक प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपमा के लोकप्रिय होने का प्रमुख कारण यह है कि इस अलंकार में वक्ता एक पदार्थ की अन्य पदार्थ से तुलना करके अपने भावों का सफलता तथा प्रभाव के साथ सम्प्रेषण करने में समर्थ होता है। ऋग्वेदिक कवियों ने उपमान के चयन के लिए अपने आस-पास के पशु जीवन को आधार बनाया है। इनमें प्रमुख रूप से गौ, वृषभ,अश्व, वत्स, श्वान, महिषी, हिरन सिंह आदि पशुओं को उपमान रूप में प्रयुक्त किया है।

वैदिक काल में कृषि कर्म के अतिरिक्त पशु-पालन, जीवन निर्वाह का प्रधान साधन था। समाज के लिए पशुओं में गाय-बैल का अधिक महत्व था। बैलों से खेती का काम लिया जाता था। गाय का दूध भोजनालयों की एक प्रधान वस्तु थी। ऋग्वेद में एक सूक्त धेनु की प्रचुर प्रशंसा से ओत-प्रोत है। ऋषि भारद्वाज द्वारा धेनु की प्रशंसा में कहा गया यह मन्त्र गाय की महत्ता को दर्शाता है -

गावो भगो गाव इन्द्रो में अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीदृधृदा मनसा चिदिन्द्रमा ।। [12]

अर्थात गाय ' भग देवता' है, गाय ही मेरे लिए इन्द्र है, गाय ही सोमरस की पहली घूँट है, ये जितनी गाएँ हैं वे, हे मनुष्यों! इन्द्र की साक्षात् प्रतिनिधि हैं। मैं हृदय से, मन से, उसी इन्द्र को चाहता हूँ। अतः वैदिक काल में गाय, वृषभ आदि का अधिकांशतः उपमान के रूप में प्रयोग मिलता है। गाय के उपमानत्व का प्रतिरुप दूध प्रदान करने वाली सायमकाल चारागाहों से वत्स की तरफ दौड़ने वाली आदि रुप में इनके उपमानों का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में मरुद्गण की उपमा दुग्ध प्रदान करने वाली गौ से करते हुए कहा गया है -

यद्युञ्जते मरुतो रूक्मवक्षसोऽष्वान्नथेषु भग आ सुदानवः।
धेनुर्न शिष्वे स्वसरेषु पिन्तवे जनाय रातहविषे महीमिषम्।।[13]

अर्थात जिस प्रकार मातृत्व शक्ति से सम्पन्न गौ अपने वत्स के प्रति स्नेहा तरीकेतिरेक के कारण उसे अपने दुग्ध भरे पूरे स्तनों से दुग्ध पान कराती है उसी प्रकार मरुद्गण हविष्य प्रदान करने वालों को अत्यधिक अन्यय धन से सिंचित करते हैं; इस प्रकार एक अन्य मन्त्र में हिरण्यस्तूप

ऋषि ने इन्द्र की स्तुति के अवसर पर गौ को सुन्दर उपमान के रूप में प्रयुक्त करते हुए कहा है -

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्र स्वर्य ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्मन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः।। [14]

अर्थात त्वष्टा के द्वारा निर्मित स्वरयुक्त वज्र के द्वारा जब इन्द्र ने पर्वत में आश्रय लेकर निवास करने वाले वृत्र को मारा, तब रंभाती हुई धेनुओं के समान जल जोरों से बहता हुआ समुद्र की ओर चल निकला। यहां वाश्रा धेनवः से सांयकाल चारागाहों से लौटने वालों अपने बछड़ों के लिए उतावली जोरों से रंभाती हुई और दौड़ती हुई गायों की उपमा जोरों से बहने वाले, रोर-शोर करने वाले बहुत दिनों तक रुके रहने के बाद प्रवाहित होने वाले जल के लिए इससे अधिक सुन्दर उपमा का विधान नहीं हो सकता।
ऋग्वेद के नवम् मण्डल के अधोलिखित मन्त्र में इन्द्र विभिन्न पेशे वालों को गाय के बछड़े से उपमानित करते हुए कहा गया है:-

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नाना।
नानाधियो वसूयवोऽनुगा इव तस्थिमेन्दायेन्दो परिस्रव।।[15]

अर्थात ऋषि (कवि) कहता है कि बढ़ई टूटी वस्तु को चाहता है, वैद्य रोगी को; ऋत्विक यज्ञ में सोम का रस निकालने वाले यजमान को, कर्मार धनाढ्य को। मैं स्वयं कारु हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी माता (ननी) जाँत पीसने वाली उपलप्रक्षिणी है। हमारे विचार नाना प्रकार के हैं और हम अपनी अभीष्ट वस्तु की ओर उसी प्रकार दौड़ रहे हैं, जिस प्रकार बछड़े गायों की ओर। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में सिन्धु आदि नदियों को गाय से उपमानित किया गया है -

अभित्वा सिन्धो शिषमिन्न मातरो वाश्रा अशान्ति पयसेव धेनवः।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षासे।। [16]

अर्थात हे सिन्धो! जैसे कोमल बछड़े के पास रंभाती गायें दूध लेकर दौड़कर जाती हैं, उसी तरह ये नदियाँ आवाज करती हुई तुम्हारे मिलने के लिए दौड़ी आती हैं। युद्ध के समय लड़ाकू राजा जिस प्रकार अपनी सेना को लेकर आगे बढ़ता है, उसी प्रकार तुम भी इन सहायक नदियों को अपने साथ लेकर आगे बढ़ती चली जाती हो।
इसी प्रकार ऋग्वेद के एक मन्त्र में गौ को उसके गुण, धर्म के आधर पर उपमान रुप में प्रयुक्त करते हुए कहा है -

स्तुहि भोजान् त्वस्तुवनो अस्य यामनि रणन गोवा न यवसे।
यतः पूर्वामिव सखींरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः।। [17]

अर्थात जिस प्रकार भोजन पाने के लिए गौवें सुन्दर घास की ओर जाती हैं उसी प्रकार युद्ध में जाते हुए, गरजते हुए इन वीरमारुतों की आनन्द पूर्वक प्रशंसा करो। ऋग्वेद के सातवें मण्डल में वत्स का उपमान के रुप में प्रयुक्त किया है:-

अव द्रुग्धानि पित्रया सृजा नोऽव या वयं चकृमा तूनभिः।
अव राजन् पशुतृपं न तायु सृजा वत्सं न दाम्नो वशिष्ठम्।।[18]

अर्थात् हे देव (वरूण) पितरों के द्वारा किये गये द्रोहोंको दूर कर दीजिए और अपने उन द्रोहों तथा विरोधों को भी दूर हटाइए जिन्हें हमने अपने शरीर से स्वयं किया है। जिस प्रकार पशु को चुराने वाले चोर को तथा बछड़े को रस्सी से लोग छुड़ा देते हैं, उसी प्रकार आप भी अपराध की रस्सी में बंधे वसिष्ठ को भी मुक्त कीजिए।

वैदिक युग का दूसरा महत्वपूर्ण पशु बैल रहा है। वैदिक समाज में बैलों की महत्ता का प्रमुख कारण इनका हल जोतने एवं बोझ वाली गाड़ी खींचने के काम में लाना है। बोझ ढोने वाले पशुओं में बैल का वर्णन ऋग्वेद के अष्टम् मण्डल के 46 सूक्त के 30 वें मन्त्र में ऊँट का वर्णन ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 104 वें सूक्त में वर्णन मिलता है। घोड़ों का भी उपयोग रथ तथा बोझ ढोने के लिए होता था। वैदिक काल में बैल को ऋषभ, उस्र तथा उसिया इत्यादि नामों से जाना जाता था। "दुध मुंहे बछड़े" को 'धरुण', डेढ़ साल के बछड़े को 'त्रयैवि', दो साल के बछड़े को 'दित्यवाह', ढाई साल वाले को 'पञ्चावि' तीन साल के बछड़ेको 'त्रिवत्स', साढ़े तीन साल वाले को 'तुर्यवाह', चार साल वाले को 'प्रष्ठवाह' कहते थे। जवान बैल को 'वृष' तथा 'ऋषभ' गाड़ी खींचने में समर्थ बैल को 'अनड्वान्' और बधिया किये गए बड़े बैल को 'महानिरष्ट' नाम से पुकारते थे।[19] ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर इसको गुण-धर्म के आधार पर उपमा के रुप में प्रयुक्त किया जाता है। ऋग्वेद में प्रथम मण्डल के 55वें सूक्त में सोम को वृषभ से अमानित करते हुए इस प्रकार कहा गया है -

भीस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः।।[20]

अर्थात जिस प्रकार बैल अपने सींग को पैना करता है उसी प्रकार शत्रुवध के लिए इन्द्र अपने वज्र को पैना करता है।
वृषभ की भाँति ऊँट का भी ऋग्वेदकालीन समाज में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। सप्तसिंधव के आसपास जो अनेक मरूस्थलों में माल ढोने वाले पशुओं में ऊँटों का वर्णन मिलता है। माल ढोने इस पशु का वर्णन भी ऋग्वेद में उपमा के रुप में मिलता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्उल में अधोलिखित मन्त्र में पूषा देव की उपमा ऊँट से देते हुए कहा गया है:-

प्रहित्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवोयथा गृध
उष्ट्रो न पीपरो मृधः। हुवे यत्वा मयोभुवं देवं सख्याय मन्त्यः।
अस्माकमाङ्जूषान्द्युम्नितस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि।। [21]

अर्थात् हे पूषा देव! जिस प्रकार मनुष्य तीव्र गतिशील अश्व को प्रशंसा द्वारा प्रोत्साहित करते हैं अथवा जिस प्रकार संग्राम की ओर प्रस्थान करने वाले वीर को प्रोत्साहित करते हैं उसी प्रकार हम स्तोत्र वाणियों द्वारा आपको प्रोत्साहित करते हैं। आप मरूस्थल से ऊँट द्वारा यात्रियों को पार उतारने के समान ही हिंसक शत्रुओं से हमें सुरक्षित करें। अश्व का ऋग्वेदकालीन समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। यह शक्ति का प्रतीक है। समुद्र मार्ग में व्यापार करने में इनका प्रयोग किया जाता था। इनके अलंकरण के लिए मोतियों का प्रयोग किया जाता था। जिनको 'कृषनावन्त'कहते थे।

इसका वर्णन ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 136 सूक्त के चौथे मन्त्र में हुआ है। यदि कारण ऋग्वेद कालीन समाज में इसको भी गुण आदि सभाव के कारण उपमा के रुप में प्रयुक्त किया गया है। अश्व को बाजी, सप्ती, अर्वा आदि नामों से भी जाना जाता था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में अधोलिखित मन्त्र में घोड़े से अग्नि की उपमा देते हुए कहा गया है -

आस्वमद्य युवमानो अजरस्तृवविष्यन्नतसुष तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं पुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत्।।[22]

अर्थात कभी जीर्णता को न प्राप्त होने वाले अग्निदेव, हवियों के साथ मिलकर इनका भक्षण करते हुए समिधाओं पर दीप्तिमान होते हैं। घृत के सिञ्चन से ऊपर उठती हुई इनकी ज्वालाएँ सज्जित अश्व के सदृष सुषोभित होती हैं। ये आकाषस्थ मेघ के गर्जन के समान शब्द करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र ऋग्वेद के अधोलिखित मन्त्र में इन्द्र और ब्राह्मण स्पति देवों को अश्व से उपमानित करते हुए कहा गया है -

विष्वं सत्यं मधवाना युवोरिदापश्चन प्रमिनन्ति व्रतं वाम्।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्न युजेव वाजिना जिगातम्।।[23]

अर्थात हे इन्द्र और ब्राह्मणस्पति! रथ में नियुक्त दो घोड़े जिस प्रकार अन्न और घास आदि की तरफ शीघ्रतापूर्वक आते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी हमारी छवि (द्रव्यों) की ओर अनुकूलता पूर्वक आओ। गौ, वृषभ, अश्व, ऊँट आदि की तरह वैदिक ऋषियों (कवियों) ने अत्यन्त शक्ति सम्पन्न सिंह को भी उपमान के रुप में यथा स्थान प्रस्तुत किया है। ऋग्वेद के प्रथम् मण्डल में अधोलिखित मन्त्र में विष्णु को सिंह से उपमानित करते हुए कहा गया है -

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरूषु त्रिषु विक्रमणे श्वधिक्षियन्ति भुवनानि विष्वा।। [24]

अर्थात जिस विष्णु के विशाल या विस्तीर्ण लम्बे तीन डगों में सम्पूर्ण लोक आ जाते हैं, उस विष्णु के की वीर कार्यों से स्तुति उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार भयानक, कुत्सित हिंसादि कार्य करने वाले या स्वतंत्रता पूर्वक भूमि पर विचरण करने वाले पर्वत आदि उन्नत प्रदेषों में रहने वाले एवं विरोधियों को ढूँढ कर मारने वाले सिंह आदि की स्तुति की जाती है। अन्यत्र तृतीय मण्डल को अधोलिखित मन्त्र में वैश्वानर को सिंह से उपमानित करते हुए कहा गया है -

"स जिन्वते जठरेषु प्रज्ञज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः।"[25]
अर्थात वैश्वानर सिंह के समान गर्जते हुए बढ़ते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य के तत्व सर्वप्रथम ऋग्वेदिक काल से विलसित हुए फिर महाभारत, रामायण काल से आगे बढ़ते हुए कालिदास, भारवि, माघ के युग तक पुष्पित हो गये। पूर्णपुष्पित हो जाने पर ही लक्ष्ण ग्रन्थों में आचार्यों ने इनका विवेचन किया। उपमा के भेद प्रभेदों का अर्भिभाव तथा विकास के स्रोत वैदिक कवियों के मन्त्र ही हैं। "वेदोऽखितः काव्यमूलम्"। अतः इस सन्दर्भ में इनके कतिपय उदाहरणों को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः सम्पूर्ण ऋग्वेद में उपमा के रूप में अनेक पशुओं के उदाहरण उपलब्ध हैं।

सन्दर्भ- ग्रन्थ सूची (References)

1. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 1.1.2
2. भामह, काव्यालंकार
3. चन्द्रालोक, प्रथम मयूख
4. कथालंकार 2/30
5. काव्यादर्ष 2/13
6. राजशेखर, अलंकार, शेखर पृ0 32
7. काव्यप्रकाष 10/125
8. साहित्यदर्पण 10/15
9. कठोपनिषद 3.6
10. साहित्यदर्पण
11. श्वे. उपनिषद
12. ऋग्वेद
13. वही 2/14/10
14. ऋग्वेद 1/32/2
15. वही 9/112/3
16. वही 10/75/4
17. वही 5/53/16
18. वही 7/86/5
19. बाज. सं. 18/26-27
20. ऋग्वेद 1/55/1
21. ऋग्वेद 1/138/2
22. वही 1/58/1
23. वही 2/24/12
24. वही 1/154/2
25. वहीं 3/2/11